# सप्तम अध्याय

राजधर्मान् प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः।
सम्भवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा ।।1।।

भृगुजी बोले—महात्माओ ! राजा को जिस प्रकार के आचरण करने चाहिए, जिस प्रकार उसकी उत्पत्ति, अर्थात् राजत्व की प्राप्ति होती है और जिस प्रकार उसे प्रजापालन में सिद्धि मिलती है, उन सब राजधर्मों का परिचय मैं आप लोगों को देने लगा हूं।

ब्राह्मप्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधिः।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्त्तव्यं परिरक्षणम् ।।2।।

वेदोक्त विधि से संस्कार किये गये (राज्याभिषिक्त) क्षत्रिय को अपने राज्य की सारी प्रजा का न्यायपूर्वक रक्षण-भरण करना चाहिए।

अराजके हि लोकेऽस्मिन् सर्वगे विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः ।।3।।

राजा के अभाव में इस संसार में सर्वत्र उपद्रव होने लगते हैं और लोग भयग्रस्त हो जाते हैं। यही कारण है कि भगवान् ने सारी प्रजा की रक्षा के लिए राजा को उत्पन्न किया है।

इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्राः निर्हत्य शाश्वतीः ।।4।।

भगवान् ने इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र और कुबेर के दिव्य गुणों को लेकर राजा की सृष्टि की है। अभिप्राय यह है कि राजा में दिव्य गुण होते हैं और वह देवों का प्रतिनिधिरूप होता है।

यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः।
तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा ।।5।।

इन्द्र, अग्नि तथा वरुण आदि देवों के अंशों से निर्मित होने के कारण ही

राजा अपने तेज से सभी प्राणियों को पराभूत करने में भी समर्थ होता है।

तपत्यादित्यवच्चैषां चक्षूंषि च मनांसि च।
न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम्।।6।।

राजा के नेत्रों और मन में सूर्य के तेज का अंकुर होता है। अतः उसके नेत्र और मन तेजोमय होते हैं। यही कारण है कि धरती पर कोई व्यक्ति सूर्य के समान राजा को भी देखने का साहस नहीं कर सकता।

सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्।
सः कुबेरः स वरुणः स महेशः प्रभावतः।।7।।

राजा अपने प्रभाव से अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, यम, कुबेर, वरुण और इन्द्र है, अर्थात् वह इन सबका प्रतिनिधि है।

बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति।।8।।

बालक राजा को भी साधारण मनुष्य मानकर उसकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह तो मनुष्य रूप में इस धरती पर एक बड़े देवता (महादेव—अनेक देवों के अंश को लिये रहने के कारण) के रूप में स्थित है।

एकमेव दहत्यग्निर्नरं ह्युपसर्पिणम्।
कुलं दहति राजाग्निः सपशु द्रव्य सञ्चयम्।।9।।

अग्नि तो अपनी अवज्ञा करने वाले उसी एक व्यक्ति को भस्म करती है, परन्तु राजा की क्रोधाग्नि व्यक्ति के कुल को, पशु, धन तथा सम्पत्तिसहित नष्ट कर देती है।

कार्यं सोऽवेक्ष्य शक्तिं च देशकालौ च तत्त्वतः।
कुरुते धर्मसिद्ध्यर्थं विश्वरूपः पुनः पुनः।।10।।

राजा कार्य को, शक्ति को, देश और काल को तत्त्व (गहराई) से देखकर धर्म की सिद्धि के लिए नाना प्रकार के रूप—कभी उग्र और कभी उदार और कभी अनुदार—धारण करता है।

यस्य प्रसादे पद्मा श्रीर्विजयश्च पराक्रमे।
मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजमयो हि सः।।11।।

राजा सभी तेजों से सम्पन्न देवरूप है, तभी तो उसकी प्रसन्नता में लक्ष्मी, पराक्रम में विजय तथा क्रोध में मृत्यु का वास रहता है।

अभिप्राय यह है कि राजा के प्रसन्न होने पर व्यक्ति को ऐश्वर्य-लाभ होता है, जबकि उसके क्रुद्ध होने पर व्यक्ति का सर्वनाश होता है।

तं यस्तु द्वेष्टि सम्मोहात्स विनश्यत्यसंशयम्।
तस्य ह्याशु विनाशाय राजा प्रकुरुते मनः ।।12।।

जो मूर्ख व्यक्ति राजा की शक्ति को न समझकर अहंकार अथवा मूर्खतावश राजा से द्वेष करता है, वह निश्चित ही अपने विनाश को निमन्त्रण देता है, क्योंकि राजा का मन ऐसे व्यक्ति के शीघ्र नाश के लिए आग्रहयुक्त हो जाता है।

तस्माद् धर्मं यमिष्टेषु सः व्यवस्येन्नराधिपः।
अनिष्टं चाप्यनिष्टेषु तं धर्मं न विचालयेत् ।।13।।

राजा को चाहिए कि अपने अनुकूल व्यक्तियों में इष्ट (प्रिय) के और प्रतिकूल व्यक्तियों में अनिष्ट के निश्चय को यथाशीघ्र कार्यरूप दे। इसमें किसी प्रकार डावांडोल नहीं होना चाहिए।

अनुकूलों को यथाशीघ्र पुरस्कृत और प्रतिकूलों को दण्डित करने से प्रजा में वाञ्छित प्रतिक्रिया होती है।

तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम्।
ब्रह्मतेजोमयं दण्डमुत्सृजत्पूर्वमीश्वरः ।।14।।

ईश्वर ने सभी प्राणियों की धर्मानुसार रक्षा के लिए ब्रह्मतेज से सम्पन्न अपने प्रतिनिधिरूप राजा को दण्ड देने की शक्ति और अधिकार प्रदान किया है।

तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
भयाद्भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च ।।15।।

राजा के दण्ड के भय से संसार के सभी स्थावर-जंगम प्राणी अपने-अपने कर्तव्य-कर्मों की उपेक्षा न करके उनका यथावत् पालन करते हैं।

तं देशकालौ शक्तिं च विद्यां चावेक्ष्य तत्त्वतः।
यथार्हतः सम्प्रणयेन्नरेष्वन्यायवर्त्तिषु ।।16।।

राजा को चाहिए कि देश, काल और अन्याय में प्रवृत्त अपराधियों की शक्ति तथा विद्या को भली प्रकार देखकर उन्हें यथायोग्य दण्ड दे।

स राजा पुरुषो दण्डः सः नेता शासिता च सः।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः ।।17।।

वास्तव में दण्ड ही राजा, दण्ड ही पुरुष, नेता, अनुशासन बनाये रखने वाला तथा चारों आश्रमों को धर्म-पालन की सुविधा जुटाने का जामिन होता है, दण्ड न हो तो कुछ भी व्यवस्थित नहीं रह पाता।

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ।।18।।

दण्ड ही सारी प्रजा का शासन और रक्षा करता है, सबके सो जाने पर दण्ड

जागता रहता है, अर्थात् दण्ड का भय निशाचरों—रात में उत्पात मचाने वाले चोर-डाकुओं—को भी बना रहता है। इस प्रकार बुद्धिमान् दण्ड को ही धर्म मानते हैं।

**समीक्ष्य सः धृतः सम्यक् सर्वाः रञ्जयति प्रजाः।**
**असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः।।19।।**

भली प्रकार सोच-विचार कर किये गये दण्ड के प्रयोग से प्रजा प्रसन्न होती है और इसके विपरीत दण्ड के अन्धाधुन्ध प्रयोग से राजा का यश और प्रतिष्ठा नष्ट होती है।

**यदि न प्रणयेद्राजा दण्डं दण्ड्येष्वतन्द्रितः।**
**शूले मत्स्यानिवापक्ष्यन्दुर्बलान्बलवत्तराः।।20।।**

यदि राजा अपराधियों को दण्ड देने में सदैव सावधान नहीं रहता, तो बड़ी मछली द्वारा छोटी मछली को खा जाने के समान शक्तिशाली व्यक्ति दुर्बलों को भून डालते हैं।

**अद्यात्काकः पुरोडाशं श्वा च लिह्याद्धविस्तथा।**
**स्वाम्यं च न स्यात्कस्मिंश्चित्प्रवर्तेताधरोत्तरम्।।21।।**

यदि राजा अपराधियों को दण्ड नहीं देता, तो कौआ पुरोडाश का और कुत्ता हवि का भक्षण करने लग जायेगा। कोई किसी का स्वामित्व स्वीकार नहीं करेगा और फिर समाज की स्थिति उत्तम, मध्यम और अधम होकर गड़बड़ा जायेगी।

**सर्वो दण्डजितो लोके दुर्लभो हि शुचिर्नरः।**
**दण्डस्य हि भयात्सर्वं जगद् भोगाय कल्पते।।22।।**

दण्ड के भय से ही संसार के लोग नियमित-अनुशासित होकर चलते हैं। इस प्रकार संसार में स्वभाव से ही पवित्र (सन्मार्गगामी) व्यक्तियों का मिलन कठिन है। सत्य तो यह है कि सम्पूर्ण जगत् के प्राणी दण्ड के भय से ही कर्तव्यपालन और उसके फलस्वरूप सुखभोग करते हैं।

**देवदानवगन्धर्वा रक्षांसि पन्नगोरगाः।**
**तेऽपि भोगाय कल्पन्ते दण्डेनैव निपीडिता।।23।।**

देव, दानव, गन्धर्व, राक्षस, पक्षी और सर्प आदि मनुष्येतर सभी जातियों के प्राणी भी दण्ड के भय से कर्तव्यपालन में प्रवृत्त होते हैं।

**दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन् सर्वसेतवः।**
**सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात्।।24।।**

दण्ड का भय न होने पर सभी वर्णों के लोग दुराचारी बन सकते हैं, नियमों

के पालन के सभी सेतु टूट सकते हैं और सारे संसार में उपद्रव फैल सकते हैं। दण्ड ही एकमात्र निवारक और नियामक है।

**यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा।**
**प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति।।25।।**

जिस देश में श्याम वर्ण और लाल आंख वाला पापनाशक दण्ड घूमता रहता है, अर्थात् दण्ड की व्यवस्था प्रचलित रहती है, राजा ठीक ढंग से जागरूक रहता है, वहां की प्रजा कभी प्रमाद नहीं करती, सदैव सावधानी से कर्तव्यपालन करती है।

**तस्याहुः सम्प्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम्।**
**समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम्।।26।।**

विद्वान् पुरुष सत्यवादी, सोच-समझकर काम करने वाले, बुद्धिमान् तथा धर्म, अर्थ और काम के वास्तविक स्वरूप को समझने वाले राजा को ही उपयुक्त गुण वाले दण्ड देने का अधिकारी मानते हैं।

**तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्धते।**
**कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते।।27।।**

दण्ड का भली प्रकार और उचित ढंग से प्रयोग करने वाले राजा का धर्म, अर्थ और काम (साधन) बढ़ते हैं और इसके विपरीत दण्ड का दुरुपयोग करने वाला क्षुद्र प्रकृति का राजा उसी दण्ड से अपना विनाश करता है।

**दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्मभिः।**
**धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम्।।28।।**

दण्ड अत्यन्त ही तेजस्वी है, जिसे संस्कारविहीन राजा लोग धारण कर ही नहीं सकते। यह दण्ड राजधर्म (न्याय और व्यवस्था) का पालन न करने वाले राजा का उसके बन्धु-बान्धवों सहित विनाश कर देता है।

**ततो दुर्गं च राष्ट्रं च लोकं च सचराचरम्।**
**अन्तरिक्षगतांश्चैव मुनीन्देवांश्च पीडयेत्।।29।।**

अन्याय से प्रयुक्त दण्ड प्रयोग करने वाले राजा को कुलसहित नष्ट करने के उपरान्त उसके दुर्ग, राष्ट्र और जड़-चेतन संसार को, अन्तरिक्ष के निवासी मुनियों और देवों को भी पीड़ित करने लगता है।

**सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना।**
**न शक्तो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च।।30।।**

सहायकों—मन्त्री, सेनापति तथा बुद्धिमान् मित्र आदि—से रहित, मूर्ख, लोभी, निर्बुद्धि तथा विषयों में आसक्त राजा द्वारा दण्ड का न्यायोचित प्रयोग

सम्भव नहीं।

शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसारिणा।
प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता।।31।।

पवित्र आचरण वाले, सत्यप्रतिज्ञ, शास्त्र का अनुसरण करने वाले, अच्छे सहायकों वाले तथा बुद्धिमान् राजा द्वारा ही दण्ड न्यायपूर्वक चलाया जा सकता है।

स्वराष्ट्रे न्यायवृत्त स्याद् भृशदण्डश्च शत्रुषु।
सुहृत् स्वजिह्मः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः।।32।।

राजा को अपने राज्य की प्रजा के प्रति न्यायकारी और शत्रुओं को उग्र दण्ड देने वाला होना चाहिए। उसे मित्रों से सरल और सौहार्दपूर्ण तथा ब्राह्मणों के प्रति क्षमा व उदारतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

एवं वृत्तस्य नृपतेः शिलोऽञ्छेनापि जीवतः।
विस्तीर्यते यशो लोके तैल-बिन्दुरिवाम्भसि।।33।।

राज्य के शिलोञ्छवृत्ति से जीवन निर्वाह करने (अभाव और दरिद्रता का जीवन जीने) पर भी उपर्युक्त विधि से दण्ड विधान करने वाले राजा का यश पानी में तैल-बिन्दु के फैलाव के समान उत्तरोत्तर और निरन्तर बढ़-फैल जाता है।

अतस्तु विपरीतस्य नृपतेरजितात्मनः।
संक्षिप्यते यशो लोके घृतबिन्दुरिवाम्भसि।।34।।

इसके विपरीत दण्ड का ग़लत ढंग से प्रयोग करनेवाले अजितेन्द्रिय राजा का यश जल में घृतबिन्दु के संकोच के समान उत्तरोत्तर घटने लगता है।

स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः।
वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षिता।।35।।

ईश्वर ने अपने-अपने धर्मों का पालन करने वाले सभी वर्णों और आश्रमों के लोगों के रक्षक के रूप में ही राजा को उत्पन्न किया है।

तेन यद्यत्सभृत्येन कर्तव्यं रक्षता प्रजाः।
तत्तद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः।।36।।

भृगुजी बोले—विप्रो ! अब मैं आप लोगों को प्रजा की रक्षा के लिए अमात्यों-सचिवों आदि के साथ राजा द्वारा आचरणीय नियमों की विस्तृत जानकारी क्रमशः और पूर्ण रूप से देता हूं।

ब्राह्मणान् पर्युपासीत प्रातरुत्थाय पार्थिवः।
त्रैविद्यवृद्धान्विदुषस्तिष्ठेत्तेषां च शासने।।37।।

राजा को प्रातःकाल उठकर तीनों वेदों (ऋग्यजुसाम) में निष्णात वृद्ध (ज्ञान

और आयु में) विद्वान् ब्राह्मणों की सेवा में उपस्थित होना चाहिए और उनके शासन (निर्देश पालन) में रहकर राज्य-कार्य का सञ्चालन करना चाहिए।

वृद्धांश्च नित्यं सेवेत विप्रान्वेदविदः शुचीन्।
वृद्धसेवी हि सततं रक्षोभिरपि पूज्यते ।।38।।

राजा को सदैव वेदवेत्ता, पवित्र आचार वाले तथा वृद्ध ब्राह्मणों के संग में रहना और उनकी सेवा करनी चाहिए। वृद्धों (ज्ञान तथा आयु में बड़ों) की सेवा करने वाला राजा राक्षसों (दुष्ट प्रकृति के जीवों) तक से सम्मानित होता है।

तेभ्योऽधिगच्छेद् विनयं विनीतात्मापि नित्यशः।
विनीतात्मा हि नृपतिर्न विनश्यति कर्हिचित् ।।39।।

सुशिक्षित राजा भी ज्ञानवृद्ध-वयोवृद्ध ब्राह्मणों से प्रतिदिन शिक्षा ग्रहण करे। विनीत, सुशिक्षित तथा विनम्र राजा का कभी नाश नहीं होता।

बहवोऽविनयान्नष्टा राजानः सपरिच्छदाः।
वनस्था अपि राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे ।।40।।

विनयरहित होने के कारण अनेक साधनसम्पन्न राजा भी नष्ट हो गये और इसके विपरीत वनों में भटकते साधनहीन राजाओं ने भी विनय से आप नष्ट राज्य प्राप्त कर लिये। इतिहास में ऐसे उदाहरण उपलब्ध हैं।

वेनो विनष्टोऽविनयान्नहुषश्चैव पार्थिवः।
सुदासो यवनश्चैव सुमुखो निमिरेव च।।41।।
पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान् मनुरेव च।
कुबेरश्च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यं चैव गाधिजः।।42।।

इतिहास साक्षी है कि अविनय ही से वेन, नहुष, सुदास, यवन, सुमुख और निमि आदि राजा नष्ट हो गये।

इसके विपरीत विनय से पृथु और मनु को राज्य की प्राप्ति हुई, कुबेर को धनादिपतित्व और गाधिपुत्र विश्वामित्र को ब्राह्मणत्व प्राप्त हो गये।

(इतिहास में अनेक मनुओं का उल्लेख मिलता है। अतः यहां मनुस्मृति काल से पूर्व के किसी मनु का वर्णन समझना चाहिए)

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्ड नीतिं च शाश्वतीम्।
आन्वीक्षकीं चात्मविद्यां वार्तारम्भाश्च लोकतः।।43।।

राजा को वेद-विद्या के पण्डितों से वेदों का ज्ञान, सनातन दण्ड नीति, तर्क शास्त्र तथा वेदान्त की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त सर्व-साधारण से लोकव्यवहार-संस्कार में रहते हुए किसके साथ किस स्थिति में कैसा बर्ताव करना चाहिए, इसकी शिक्षा लेनी चाहिए।

इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम्।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः।।44।।

राजा को अपनी इन्द्रियों पर विजय का दिन-रात प्रयास करना चाहिए, क्योंकि जितेन्द्रिय राजा ही प्रजा को वश में रखने में समर्थ होता है।

दश काम समुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत्।।45।।

राजा को काम से उत्पन्न होने वाले दस और क्रोध से उत्पन्न होने वाले आठ, कुल अठारह दुर्जेय विषयों से मुक्त रहने और उन पर विजय पाने का प्रयत्न करना चाहिए।

कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः।
वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु।।46।।

काम से उत्पन्न होने वाले दस दोषों में आसक्त होने वाला राजा अर्थ और धर्म से हीन हो जाता है। इसी प्रकार क्रोध से उत्पन्न होने वाले आठ व्यसनों से ग्रस्त व्यक्ति अपने शरीर को भी नष्ट कर बैठता है।

मृगयाक्षदिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः।
तौर्यत्रिकं वृथाद्या च कामजो दशको गणः।।47।।

काम से उत्पन्न होने वाले दस व्यसन हैं—(1) शिकार खेलना, (2) जुआ खेलना, (3) दिन में सोना, (4) दूसरों की निन्दा करना, (5) स्त्रियों का संग, (6) सुरापान, (7) नाचना, (8) गाना, (9) बजाना तथा (10) अकारण इधर-उधर घूमना।

पैशुन्यं साहसं मोहं ईर्ष्याऽसूयार्थ दूषणम्।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपिगणोऽष्टकः।।48।।

क्रोध से उत्पन्न होने वाले आठ दोष अथवा व्यसन हैं—(1) चुगुली, (2) साहस, (3) द्रोह, (4) ईर्ष्या, (5) दूसरे के गुणों में दोषदृष्टि, (6) परद्रव्य हरण, (7) दूसरों को गाली देना तथा (8) दूसरों से कठोर व्यवहार करना।

द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः।
तं त्यनेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ।।49।।

काम और क्रोध से उत्पन्न होने वाले दोनों प्रकार के दोष-समूह लोभ से ही उत्पन्न होते हैं, यह सभी विद्वानों का मत है। अतः राजा को लोभ पर विजय पाने की पूरी चेष्टा करनी चाहिए।

पानभक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे।।50।।

काम से उत्पन्न होने वाले व्यसनों के समूह में चार की गणना है— मदिरापान, मांसभक्षण, स्त्रीसंग और शिकार। इस चौकड़ी पर विजय पाने को बड़ा ही कष्टसाध्य कर्म समझना चाहिए।

**दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थ दूषणे।**
**क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा।।51।।**

क्रोध से उत्पन्न होने वाले विषयों में से भी तीन—शारीरिक दण्ड, कठोर वचनों से मान-हानि करना तथा द्रव्यहरण करना—पर नियन्त्रण रखना बड़ा कठिन है।

**सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषङ्गिणः।**
**पूर्वं-पूर्वं गुरुतरं विद्याद् व्यसनमात्मवान्।।52।।**

बुद्धिमान् राजा को उपर्युक्त सात व्यसनों—काम से उत्पन्न होने वाले चार और क्रोध से उत्पन्न होने वाले तीन—में क्रमशः पूर्व-पूर्व द्रव्यहरण से कठोर वचन, कठोर वचनों से शारीरिक दण्ड, इसी प्रकार शिकार से स्त्रीसंग, स्त्रीसंग से मांस-भक्षण और उससे भी मदिरापान पर विजय पाना कठिन समझना चाहिए।

**व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते।**
**व्यसन्यधोऽधोव्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः।।53।।**

व्यसन और मृत्यु में से व्यसन अधिक कष्टकर है। व्यसनी पुरुष का नीचे से नीचे पतन होता है, जबकि निर्व्यसनी मरने पर स्वर्ग-लाभ करता है।

**मौलाञ्छास्त्रविदः शूरांल्लब्धलक्षान् कुलोद्गतान्।**
**सविचान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्।।54।।**

राजा को मूल परम्परा से सेवारत, शास्त्रवेत्ता, शूरवीर, सफल लक्ष्यभेदी, श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न और परीक्षा में खरे उतरे सात-आठ व्यक्तियों को सचिव पद पर नियुक्त करना चाहिए।

**अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्।**
**विशेषतोऽसहायेन किन्तु राज्यं महोदयम्।।55।।**

संसार में प्रायः देखा जाता है कि सुगम लगने वाला कार्य भी अकेले और विशेषतः असहाय व्यक्ति को कठिन प्रतीत होता है, तब इतने बड़े झमेले वाले राज्य के भार को भला अकेला राजा कैसे उठा सकता है? अतः उसे सचिवों के सहयोग की आवश्यकता है।

**तैः सार्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं सन्धिविग्रहम्।**
**स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च।।56।।**

राजा को अपने सचिवों के साथ सामान्य रूप से सन्धि, युद्ध, स्थान (देश)

की उत्पत्ति, धन-धान्य की वृद्धि, प्राप्त की रक्षा और वृद्धि आदि की चर्चा करते रहनी चाहिए।

**तेषां स्वं स्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक् पृथक्।**
**समस्तानां च कार्येषु विदध्याद्धितमात्मनः।।57।।**

राजा को उपर्युक्त विषयों पर अपने मन्त्रियों के पृथक्-पृथक् और मिले-जुले विचारों को जानकर प्रजा के हित के लिए कार्य करना चाहिए।

**सर्वेषां तु विशिष्टेन ब्राह्मणेन विपश्चिता।**
**मन्त्रयेत्परमं मन्त्रं राजा षाड्गुण्यसंयुतम्।।58।।**

अपने सात-आठ मन्त्रियों में विशिष्ट, अधिक बुद्धिमान् ब्राह्मण मन्त्री के साथ राजा को सन्धि-विग्रह आदि छह विषयों पर विचार-विमर्श करना चाहिए।

**नित्यं तस्मिन् समाश्वस्तः सर्वकार्याणि निक्षिपेत्।**
**तेन सार्धं विनिश्चित्य ततः कर्म समारभेत्।।59।।**

राजा ब्राह्मण मन्त्री पर विश्वास करके तथा उसे विश्वास में लेकर अपने सारे कार्यों का भार उसी पर सौंप दे और उसके साथ भली प्रकार विचार-विमर्श और निर्णय लेकर अपना काम प्रारम्भ करे।

**अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन्प्राज्ञानवस्थितान्।**
**सम्यगर्थ समाहर्तॄनमात्यान्सुपरीक्षितान्।।60।।**

राजा को अपने राज्य के दूसरे भी पवित्र, बुद्धिमान् और भली प्रकार परीक्षित तथा द्रव्य के उपार्जन की युक्ति के विशेषज्ञ पुरुषों को सचिव पद पर नियुक्त करना चाहिए।

**निर्वर्ततास्य यावद्भिरिति कर्तव्यतानृभिः।**
**तावतोऽतन्द्रितान्दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान्।।61।।**

राजा को अपने राज्य-कार्य को सुविधा और व्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए जितने भी व्यक्तियों की आवश्यकता हो, उसे उतने ही निरलस, योग्य, कार्यकुशल और कर्तव्यपरायण व्यक्तियों को सचिव अथवा अमात्य के रूप में नियुक्त करना चाहिए।

**तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान्दक्षान्कुलोद्गतान्।**
**शुचीनाकरकर्मान्ते भीरूनन्तनिवेशने।।62।।**

राजा को सचिव पद पर नियुक्त सभी व्यक्तियों में शूरवीर, चतुर और कुलीन व्यक्तियों, आर्थिक विषयों का पवित्र आचरण वालों को खानों के खुदवाने का और धर्मभीरुओं को महल की देख-रेख एवं आवश्यकताओं की पूर्ति का कार्य-भार सौंपना चाहिए।

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम्।
इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम्।।63।।

राजा को सभी शास्त्रों के ज्ञाता, संकेतों, चेहरे की मुद्राओं और चेष्टाओं से दूसरों के भावों को समझने में निपुण, पवित्र अन्तःकरण वाले, चतुर और कुलीन व्यक्ति को दूत नियुक्त करना चाहिए।

अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित्।
वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते।।64।।

राजा और राज्य से सच्चा अनुराग रखने वाला, अर्थात् समर्पित, अन्तःकरण और बाहर से शुद्ध, पवित्र, अपना कार्य निकालने में चतुर, प्रखर स्मृति वाला, देश और काल की जानकारी रखने वाला (कब, कहां, क्या करना चाहिए का विवेक रखने वाला) अच्छे डील-डौल वाला, अर्थात् आकर्षक व्यक्तित्व वाला, बातचीत करने में चतुर तथा निर्भीक व्यक्ति ही सफल दूत कहलाता है।

अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया।
नृपतौ कोशराष्ट्रं च दूते सन्धिविपर्ययौ।।65।।

दण्ड मन्त्री के अधीन होता है और सुशिक्षा दण्ड के अधीन रहती है। अभिप्राय यह है कि लोग दण्ड के भय से सदाचरण करते हैं और दण्ड देने का कार्य मन्त्री को सौंप देना चाहिए। राजा को अपने पास कोश और राष्ट्र की रक्षा का कार्य रखना चाहिए और विदेश विभाग, पड़ोसी राजाओं से सन्धि-विग्रह मूलक सम्बन्धों को रखना आदि दूत को सौंप देना चाहिए।

दूत एव हि सन्धत्ते भिनत्त्येव च संहतान्।
दूतस्तत्कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन मानवाः।।66।।

ख़राब सम्बन्धों को सुधारने और अच्छे सम्बन्धों को बिगाड़ने का काम दूत ही करता है। दूत इस प्रकार के काम भी करता है, जिससे अपने देश के विरोधी दूसरे देश के निवासियों में फूट पड़ जाती है।

स विद्यादस्य कृत्येषु निगूढेङ्गितचेष्टितैः।
आकारमिङ्गितं चेष्टां भृत्येषु च चिकीर्षितम्।।67।।

दूत को राजा के विरोधियों अथवा असन्तुष्टों के संकेतों और चेष्टाओं से उनके राजद्रोहपरक षड्यन्त्रों को तथा उनके विश्वस्त भृत्यों की मुखमुद्राओं, संकेतों और चेष्टाओं से उनके मनोरथ को भांपने का प्रयास करना चाहिए।

बुद्ध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम्।
तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत्।।68।।

विरोधी राजा के मनोरथ की यथासम्भव सही जानकारी प्राप्त करके दूत

को पहले से ही ऐसे निरोधक अथवा निवारक उपाय एवं प्रयत्न करने चाहिए, जिससे कि विरोधी राजा उसके स्वामी को दबा न सके।

**जाङ्गलं सस्यसम्पन्नमार्यप्रायमनाविलम्।**
**रम्यमानतसामन्तं स्वाजीव्यं देशमावसेत्।।69।।**

राजा को ऐसे देश में रहना चाहिए, जिसके चारों ओर जंगल हो, अर्थात् नगर का विस्तार बहुत हो, जहां की धरती हरी-भरी और धन-धान्य से सम्पन्न हो तथा पानी की प्रचुरता हो और परिवेश सुन्दर हो, जहां के निवासी शिष्ट आर्य पुरुष हों और जहां किसी प्रकार के रोग की आशंका न हो तथा जहां आजीविका के अनेक साधन सुलभ हों। ऐसे स्थान पर ही राजा को अपना निवास, अर्थात् राजधानी बनानी चाहिए।

**धनुर्दुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा।**
**गिरिदुर्गं नृदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम्।।70।।**

राजा को अपने निवास को धनुष की आकृति के, पृथ्वी की आकृति के, जल की आकृति के, वृक्षों की आकृति के, पर्वतों के आकार के अथवा मनुष्यों द्वारा निर्मित दुर्ग में से किसी भी एक प्रकार के दुर्ग से सुरक्षित करना चाहिए।

**सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत्।**
**एषां हि बाहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते।।71।।**

इन सभी प्रकार के दुर्गों में गिरिदुर्ग सर्वाधिक सुरक्षित होने से उत्कृष्ट है। अतः राजा को गिरिदुर्ग का आश्रय लेने का ही प्रयत्न करना चाहिए।

**त्रीण्याद्यान्याश्रितास्त्वेषां मृगगर्ताश्रयाऽप्सराः।**
**त्रीण्युत्तराणि क्रमशः प्लवङ्ग मनरामराः।।72।।**

उपर्युक्त छह प्रकार के दुर्गों में छह प्रकार के प्राणी अपनी रक्षा करने में समर्थ होते हैं। प्रथम धनुर्दुर्ग में मृग, द्वितीय महीदुर्ग में मूसे, तृतीय जलदुर्ग में जलचर जीव रहते हैं, चतुर्थ वृक्षदुर्ग में वानर, नृदुर्ग में साधारण मनुष्य और पर्वतदुर्ग में देव जाति के पर्वतीय लोग निवास करते हुए अपनी रक्षा करते हैं।

**यथा दुर्गाश्रितानेतान्नोपहिंसन्ति शत्रवः।**
**तथारयो न हिंसन्ति नृपं दुर्गं समाश्रितम्।।73।।**

जैसे उपर्युक्त छह प्रकार के दुर्गों का आश्रय लेने वाले, छह प्रजापतियों के जीवों को शत्रु पीड़ित नहीं कर सकते, ठीक उसी प्रकार दुर्ग का आश्रय लेने वाले राजा को भी शत्रु मार नहीं सकते।

**एकः शतं योधयति प्रकारस्थो धनुर्धरः।**
**शतं दशसहस्राणि तस्माद् दुर्गं विधीयते।।74।।**

दुर्ग का निर्माण किया ही इसलिए जाता है कि दुर्ग की चारदीवारी के भीतर रहने वाला एक योद्धा बाहर के सौ का और सौ योद्धा दस हजार योद्धाओं का सामना करने में समर्थ हो जाते हैं।

**तत्स्यादायुधसम्पन्नं धनधान्येन वाहनैः।**
**ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च ।।75।।**

उस दुर्ग में शस्त्रों, धन-धान्यों, अश्व-गज तथा रथ आदि वाहनों, यन्त्रों, जल तथा ईंधन आदि का बहुत बड़ा भाण्डार होना चाहिए तथा उसमें ब्राह्मणों, शिल्पियों और यन्त्रकारों का निवास होना चाहिए।

**तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद् गृहमात्मनः।**
**गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ।।76।।**

उस दुर्ग के मध्य में अपना पर्याप्त विस्तृत आवास बनाना चाहिए, जो सब प्रकार से सुरक्षित हो। सभी ऋतुओं में अनुकूल, उज्ज्वल तथा जल और वृक्षों से युक्त, अर्थात् सुरम्य और वातावरण की दृष्टि से सुखद हो।

**तदध्यासोद्वहेद् भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्।**
**कुले महति सम्भूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम् ।।77।।**

उस घर में निवास करते हुए राजा को अपनी ही जाति की, शुभ लक्षणों वाली, बड़े वंश में उत्पन्न, मन को प्रसन्न करने वाली, आकर्षक और रूप तथा गुणों से सम्पन्न सुन्दर स्त्री से विवाह करना चाहिए।

**पुरोहितं च कुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजम्।**
**तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्युर्वैतानिकानि च ।।78।।**

राजा को पुरोहित, आचार्य तथा ऋत्विज आदि का वरण करना चाहिए, जिससे कि ये लोग राजा के गृह कर्म, अग्निहोत्र आदि को सम्पन्न कर सकें।

**यजेत राजा क्रतुभिर्विविधैराप्तदक्षिणैः।**
**धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दद्याद् भोगान्धनानि च ।।79।।**

दुर्ग में रहते हुए राजा को अनेक यज्ञ करने चाहिए, जिसमें बहुत बड़ी-बड़ी दक्षिणा देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त भी धर्म के निमित्त ब्राह्मणों को धन और मूल्यवान् पदार्थ देते रहने चाहिए।

**सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद् बलिम्।**
**स्याच्चाम्नाय परो लोके वर्तेत पितृवन्नृषु ।।80।।**

प्रामाणिक (परीक्षित-ईमानदार) पुरुषों के माध्यम से ही राजा को भू-राजस्व (कृषि-कर) की उगाही करनी चाहिए। उसे लोक में वेद-शास्त्र द्वारा निर्दिष्ट पथ का अनुसरण करना चाहिए और प्रजा के साथ अपनी सन्तान के

समान व्यवहार करना चाहिए।

**अध्यक्षान्विविधान्कुर्यात्तत्र तत्र विपश्चितः।**

**तेऽस्य सर्वाण्यवेक्षेरन्नृणां कार्याणि कुर्वताम्।।81।।**

राजा को प्रजा के कल्याण से सम्बन्धित कार्यों के प्रभारियों पर दृष्टि रखने के लिए अनेक अधिकारी विद्वानों की अध्यक्ष पद पर नियुक्ति करनी चाहिए और उन्हें निर्देश देना चाहिए कि वे उन व्यक्तियों के सभी प्रकार के कार्यों पर कड़ी दृष्टि रखें।

**आवृत्तानां गुरुकुलाद्विप्राणां पूजको भवेत्।**

**नृपाणामक्षयोह्येषः निधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते।।82।।**

राजा को गुरुकुल से लौटे ब्राह्मणों (स्नातकों) की श्रद्धापूर्वक सेवा-पूजा करनी चाहिए। स्नातकों को दिया गया दान राजाओं का अक्षय ब्राह्मकोश कहलाता है, अर्थात् वह राजाओं का यश फैलाता है। अतः राजा को उत्साहपूर्वक स्नातकों का स्वागत करना चाहिए।

**न तं स्तेनाः न चामित्राः हरन्ति न च नश्यति।**

**तस्माद्राज्ञा निधातव्यो ब्राह्मणेस्वक्षयो निधिः।।83।।**

स्नातकों को दिये गये धन को न चोर और शत्रु चुरा सकते हैं और न ही वह धन नष्ट होता है। अतः राजा को उन ब्राह्मणों के पास अपनी अक्षय निधि का सञ्चय करना चाहिए।

**न स्कन्दते न व्यथते न विनश्यति कर्हिचित्।**

**वरिष्ठमग्निहोत्रेभ्यो ब्राह्मणस्य मुखे हुतम्।।84।।**

स्नातक ब्राह्मणों को दान देना यज्ञ-यागादि करने से कहीं अधिक उत्तम है, क्योंकि अग्नि में डाली गयी हवि कभी सूख, गिर और नष्ट हो सकती है, जबकि ब्राह्मण के मुख में गया भोजन इन दोषों से सर्वथा मुक्त होता है।

**सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मण ब्रुवे।**

**प्राधीते शतसाहस्रमनन्तं वेदपारगे।।85।।**

क्षत्रिय और वैश्य आदि को दिये गये दान का उसके मूल्य के अनुरूप फल होता है। अपने को ब्राह्मण कहने वाले, अर्थात् अशिक्षित ब्राह्मण को दान देने से पदार्थ के मूल्य का दुगुना पुण्य होता है, सुशिक्षित ब्राह्मण को दिये दान का लाख गुना तथा वेद-विद्या में पारंगत विद्वान् को दिये गये दान का अनन्त गुणा फल-लाभ होता है।

अभिप्राय यह है कि दान का सच्चा अधिकारी वेदज्ञ ब्राह्मण ही है।

पात्रस्य हि विशेषेण श्रद्दधान तथैव च।
अल्पं वा बहु वा प्रेत्य दानस्यावाप्यते फलम्।।86।।

दान लेने वाले पात्र की विशेषता और देने वाले की श्रद्धा के अनुपात में ही यजमान को परलोक में थोड़ा-बहुत फल-लाभ होता है।

समोत्तमाधमैः राजा त्वाहूतः पालयन्प्रजाः।
न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रधर्ममनुस्मरन्।।87।।

प्रजा का पालन करता हुआ राजा यदि किसी सम, उत्तम अथवा अधिक शक्ति वाले राजा द्वारा युद्ध के लिए ललकारा जाता है, तो उसे क्षत्रिय धर्म का स्मरण करते हुए चुनौती को स्वीकारना चाहिए।

संग्रामेस्वनिवर्तित्वं प्रजानां चैव पालनम्।
शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां श्रेयस्करं परम्।।88।।

युद्धभूमि से पीठ दिखाकर न हटना, प्रजा का पालन करना और धन-सम्पत्ति से ब्राह्मणों की सेवा करना राजाओं के कल्याण करने वाले धर्म हैं।

आहवेषु मिथोऽन्योऽन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः।
युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः।।89।।

युद्ध में एक-दूसरे के वध की कामना करते हुए अपनी पूरी शक्ति से लोहा लेने वाले और प्राणों का संकट उपस्थित होने पर भी पीछे न हटने वाले राजा युद्ध में प्राण त्यागने पर स्वर्गगामी होते हैं।

न कूटैरायुधैर्हन्याद्युध्यमानो रणे रिपून्।
न कर्णिभिर्नापिदिग्धैर्नाग्निर्ज्वलिततेजनैः।।90।।

युद्धक्षेत्र में शत्रुओं को कूट (गुप्त) आयुधों (प्रक्षेपात्रों) से, कर्णि अस्त्रों–शरीर में घुसने पर जिन्हें निकालना कठिन हो जाता है–से तथा विष में बुझे और अग्नि बरसाने वाले शस्त्रों से नहीं मारना चाहिए।

न च हन्यात्स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम्।
न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीति वादिनं।।91।।
न सुप्तं न विन्नाहं न नग्नं न निरायुधम्।
नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम्।।92।।

वीर क्षत्रिय को रथ, अश्व, गज आदि वाहनों से उतरकर धरती पर खड़े, नपुंसक, हाथ जोड़कर खड़े, सिर के बाल खोलकर खड़े, धरती पर बैठे, 'मैं तुम्हारी शरण में हूं' कहते, सोये, कवच उतारे, नग्न, बिना शस्त्र धारण किये, लड़ने को असहमत, लड़ता देखते को तथा दूसरों से बातचीत करते शत्रु का वध नहीं करना चाहिए।

नायुधव्यसनप्राप्तं नार्तं नातिपरिक्षतम्।
न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन्॥93॥

सज्जनों के धर्म का पालन करते हुए वीर क्षत्रिय राजा को भग्न शस्त्रों वाले, व्यसन, इष्टनाश अथवा अनिष्ट-प्राप्तिरूप, विपत्ति से ग्रस्त, दुःखी, अत्यधिक घायल, डरपोक अथवा डरे हुए और भागते हुए शत्रु का वध नहीं करना चाहिए।

यस्तु भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते परैः।
भर्तुर्यद् दुष्कृतं किञ्चित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते॥94॥

जो राजा डरे हुए अथवा युद्ध से लौटते हुए शत्रु का वध करता है, वह मरने वाले के द्वारा किये सभी पापों के फल को भोगता है।

यच्चास्य सुकृतं किञ्चिदमुत्रार्थमुपार्जितम्।
भर्त्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य च॥95॥

पीछे हटने वाले को मारने वाले के परलोक के लिए संचित सभी पुण्य कर्म मरने वाला ले लेता है।

रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून् स्त्रियः।
सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयति तस्य तत्॥96॥

युद्ध में शत्रुओं के रथ, अश्व, गज, छत्र, धन (नकदी, आभूषण तथा पशु आदि), धान्य, पशु, स्त्रियां, अन्यान्य पदार्थ तथा घृत-तैल आदि को जो भी जीतता है, राजा को वह सब उसको ही दे देना चाहिए।

निश्चित है कि इससे योद्धाओं का मनोबल ही नहीं बढ़ता है, अपितु उनकी स्वामिभक्ति भी चमकती है।

राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः।
राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम्॥97॥

वेदों में ऐसा उल्लेख अवश्य मिलता है कि योद्धाओं को लूटा माल अपने स्वामी को सौंप देना चाहिए, परन्तु उचित यह है कि राजा को वह माल तो योद्धाओं को दे ही देना चाहिए, संयुक्त रूप से लूटा हुआ माल भी सभी वीरों में बांट देना चाहिए।

एषोऽनुपस्कृतः प्रोक्तो योधधर्मः सनातनः।
अस्माद्धर्मान्न च्यवेत क्षत्रियोऽघ्नन् रणे रिपून्॥98॥

भृगुजी बोले—यही योद्धाओं का अनिन्दित सनातन धर्म है। युद्ध में शत्रुओं को मारते हुए, क्षत्रिय को इस धर्म का उल्लघंन नहीं करना चाहिए।

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः।
रक्षितं वर्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निक्षिपेत्॥99॥

राजा को अप्राप्त की प्राप्ति, प्राप्त की यत्न से रक्षा, रक्षित की निरन्तर वृद्धि और वर्धित के अधिकारियों में विनियोग के लिए तत्पर रहना चाहिए।

**एतच्चतुर्विधं विद्यात्पुरुषार्थप्रयोजनम्।**
**अस्य नित्यमनुष्ठानं सम्यक्कुर्यादतन्द्रितः।।100।।**

राजा के राजा होने का उद्देश्य उपर्युक्त चार पुरुषार्थों—अप्राप्त की प्राप्ति, प्राप्त की सुरक्षा, सुरक्षित की वृद्धि और वर्धित का सदुपयोग—की सिद्धि है। राजा को सदैव सावधान रहकर इस सिद्धि के लिए यत्नशील होना चाहिए।

**अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया।**
**रक्षितं वर्द्धयेद्वृत्त्या वृद्धं दानेन निक्षिपेत्।।101।।**

राजा को अप्राप्त को शक्ति से प्राप्त करने, प्राप्त की देखभाल से रक्षा करने, रक्षित को निवेश से बढ़ाने और बढ़े को दान में लगाने को तत्पर रहना चाहिए।

**नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः।**
**नित्यं संवृतसर्वार्थो नित्यं छिद्रानुसारी च।।102।।**

राजा को सदैव शक्ति का प्रयोक्ता एवं पुरुषार्थ का प्रकाशक, अपनी सम्पत्ति को गुप्त रखने वाला और शत्रु के छिद्रों पर दृष्टि रखने वाला होना चाहिए।

**नित्यमुद्यतदण्डस्यकृत्स्नमुद्विजते जगत्।**
**तस्मात्सर्वाणि भूतानि दण्डेनैव प्रसाधयेत्।।103।।**

सदैव दण्ड देने को उद्यत रहने वाले राजा से सारा संसार भय खाता है। अतः दण्ड द्वारा ही राजा को सबको सीधे मार्ग पर चलाना चाहिए।

**अमाययैव वर्तेत न कथञ्चन मायया।**
**बुध्येतारप्रयुक्तां च मायां नित्यं स्वसंवृतः।।104।।**

राजा को अपनी प्रजा के साथ सर्वथा निष्कपट भाव से व्यवहार करना चाहिए। उसे अपने को गुप्त रखते हुए शत्रु के छल-कपट के प्रति सावधान रहना चाहिए।

**नास्य छिद्रं परोविद्याद् विद्याच्छिद्रं परस्य तु।**
**गूहेत्कूर्मइवाङ्गानि रक्षेद् विवरमात्मनः।।105।।**

राजा को ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि उसके दोषों को तो शत्रु न जान सके, पर वह शत्रु के दोषों को भांप ले। कछवे के समान ही राजा को अपने अंगों (कोश, सेना आदि) को गुप्त रखना और अपने दोषों को छिपाये रखना चाहिए।

**वकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत्।**
**वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत्।।106।।**

राजा को बगुले के समान धन की चिन्ता, सिंह के समान पराक्रम करने

वाला, भेड़िये के समान निर्मम हत्या करने वाला और खरगोश के समान भागने वाला होना चाहिए।

**एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः।**
**तानानयेद्वशं सर्वान्सामादिभिरुपक्रमैः।।107।।**

इस प्रकार विजय की कामना करने वाले राजा को साम-दाम आदि उपायों से अपने विरोधियों को अपने वश में करना चाहिए।

**यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमैस्त्रिभिः।**
**दण्डेनैव प्रसह्येतांश्छनकैर्वशमानयेत्।।108।।**

राजा के शत्रु यदि साम-दाम और भेद जैसे तीन उपायों से वश में नहीं आते, तो राजा को चाहिए कि दण्ड के प्रयोग से सभी को धीरे-धीरे और ढंग से अपने वश में करे।

**सामादीनामुपायानां चतुर्णामपि पण्डिताः।**
**सामदण्डौ प्रशंसन्ति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये।।109।।**

राजनीति के चार—साम, दाम, भेद और दण्ड—उपायों में पण्डित लोग राष्ट्र की उन्नति के लिए साम और दण्ड के प्रयोग का ही अधिक समर्थन करते हैं।

**यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति।**
**तथा रक्षेन्नृपोराष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः।।110।।**

जिस प्रकार खेतिहर धान्य की रक्षा करता है और खर-पतवार को उखाड़ फेंकता है, उसी प्रकार राजा को राष्ट्र की रक्षा और विरोधियों की हत्या करनी चाहिए।

**मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया।**
**सोऽचिराद्भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः।।111।।**

अज्ञानवश अपनी प्रजा को दुःख देने वाला विवेकहीन राजा शीघ्र ही बन्धु-बान्धवों के साथ राज्य और जीवन से हाथ धो बैठता है।

**शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा।**
**तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात्।।112।।**

जिस प्रकार शरीर के शोषण (अन्नादि का अभाव अथवा न्यूनता अथवा दोषयुक्त) से प्राणियों के प्राण क्षीण हो जाते हैं, उसी प्रकार राष्ट्र (प्रजा) को पीड़ा पहुंचाने पर राजाओं के प्राण भी क्षीण हो जाते हैं।

अभिप्राय यह है कि राजाओं को अपनी प्रजा को कभी पीड़ित नहीं करना चाहिए।

राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत्।
सुसंगृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते।।113।।

राष्ट्र के संग्रह (प्रजा के अभ्युदय-भौतिक समृद्धि) के लिए राजा को आगे कहे जाने वाले उपाय करने चाहिए। राष्ट्र के समृद्ध और सन्तुष्ट होने पर ही राजा सुखपूर्वक रहता और उन्नति करता है।

द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम्।
तथा ग्रामशतानां च कुर्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम्।।114।।

राजा को अपने राज्य की सुव्यवस्थित उन्नति के लिए दो-दो, तीन-तीन तथा पांच-पांच गांवों के वर्ग बनाने चाहिए और फिर सौ ग्रामों का एक समुदाय बनाकर विकास की योजना लागू करनी चाहिए।

ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद्दशग्रामपतिं तथा।
विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च।।115।।

प्रत्येक गांव के विकास को देखने के लिए जैसे एक मुखिया नियुक्त किया जाये, वैसे ही दस गांवों का, दस-दस गांवों को मिलाकर बीस गांवों का, फिर बीस-बीस गांवों के पांच वर्गों को मिलाकर सौ गांवों का और सौ-सौ के दस वर्गों से हज़ार गांवों का एक समुदाय बनाना चाहिए और उनकी देखभाल के लिए एक-एक मुखिया नियुक्त करना चाहिए।

ग्राम दोषान्समुत्पन्नान् ग्रामिकः शनकैः स्वयम्।
शंसेत् ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिनम्।।116।।
विंशतीशस्तु तत्सर्व शतेशाय निवेदयेत्।
शंसेन ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम्।।117।।

एक ग्राम का मुखिया अपने गांव में उत्पन्न और अपने द्वारा सुधारे न जा सकने वाले दोष का प्रतिवेदन दस ग्रामों के स्वामी को दे। दस ग्रामों का स्वामी समर्थ न होने पर बीस ग्रामों के अधिपति को, बीस ग्रामों का स्वामी सौ ग्रामों के स्वामी को और सौ ग्रामों का स्वामी अपने से ऊपर के हज़ार ग्रामों के स्वामी को इस विषय में अपनी टिप्पणीसहित सूचित करे।

यानि राज प्रदेयानि प्रत्यहं ग्रामवासिभिः।
अन्नपानेन्धनादीनि ग्रामिकस्तान्यवाप्नुष्यात्।।118।।

ग्रामवासियों द्वारा कर के रूप में राज्य को दिये जाने वाले अन्न, पान और ईंधन आदि की उगाही करना भी गांव के मुखिया का ही दायित्व है।

दशी कुलं तु भुञ्जीत विंशी पञ्च कुलानि च।
ग्रामं ग्रामशताध्यक्षः सहस्राधिपतिः पुरम्।।119।।

छह-छह बैलों वाले दो हलों से जोती जाने वाली धरती कुल कहलाती है। इस रूप में दस ग्रामों के मुखिया को एक कुल और बीस ग्रामों के मुखिया को पांच कुलों की धरती से लगान वसूलना चाहिए। सौ गांवों के मुखिया को पूरे गांव से और हज़ार गांव के मुखिया को नगर से कर उगाहने का अधिकार है।

**तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक् कार्याणि चैव हि।**

**राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतन्द्रितः।।120।।**

इन सभी ग्रामाधिपतियों के कार्यक्षेत्रों और कार्यों की देखभाल का दायित्व राजा के एक विश्वस्त सचिव के पास होना चाहिए, जो सदैव निरलस होकर उन पर निगरानी रखे।

**नगरे नगरे चैकं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम्।**

**उच्चैः स्थानं घोररूपं नक्षत्राणामिव ग्रहम्।।121।।**

राजा को प्रत्येक नगर में भी सभी नागरिकों के हित की चिन्ता करने वाले, एक कुलीन और तेजस्वी पुरुष की नगराधिपति के पद (प्रधान) पर नियुक्ति करनी चाहिए। वह व्यक्ति नक्षत्रों में शुक्र के समान देदीप्यमान और किसी से भयभीत न होने वाला होना चाहिए।

**स तानुपरिक्रामेत्सर्वानेव सदा स्वयम्।**

**तेषां वृत्तं परिणयेत्सम्यग्राष्ट्रेषु तच्चरैः।।122।।**

नगराधिपति को स्वयं ग्रामों में जाकर ग्रामाधिपतियों के कार्य-कलापों का निरीक्षण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उनके समाचारों की जानकारी देने के लिए नियुक्त दूतों से भली प्रकार सम्पर्क भी बनाये रखना चाहिए।

**राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः।**

**भृत्याः भवन्ति प्रायेण तेभ्योरक्षेदिमाः प्रजाः।।123।।**

प्रजा की रक्षा के लिए नियुक्त राज्यकर्मचारी प्रायः दुष्ट और प्रजाजनों का द्रव्य हरण करने वाले होते हैं, अतः राजा को इन राज्यकर्मचारियों से प्रजा की रक्षा करनी चाहिए।

**ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः।**

**तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम्।।124।।**

प्रजाजनों के किसी कार्य को निपटाने के लिए धन (घूस) ग्रहण करने वाले पापबुद्धि अधिकारियों की सारी सम्पत्ति छीनकर उन्हें देश से बाहर निकाल देना चाहिए।

**राजा कर्मसु युक्तानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च।**

**प्रत्यहं कल्पयेत् वृत्तिं स्थानं कर्मानुरूपतः।।125।।**

राजा को विभिन्न कार्यों में लगे स्त्रियों और पुरुषों के पद और कार्य के अनुरूप उनकी वृत्ति नियत करनी चाहिए और उनकी सदैव समीक्षा करते रहना चाहिए, अर्थात् बढ़ाते रहना चाहिए।

**पणो देयोऽवकृष्टस्य षडुत्कृष्टस्य वेतनम्।**

**षाण्मासिकस्तथाच्छादो धान्यद्रोणस्तु मासिकः।।126।।**

साधारण कार्य करने वाले कर्मचारी को एक पण वेतन और एक द्रोण धान्य प्रतिमास तथा छह महीने में वर्दी (यूनीफ़ार्म) देनी चाहिए। इसके परिप्रेक्ष्य में विशिष्ट अथवा उत्कृष्ट कार्य करने वाले कर्मचारी को स्थिति के अनुरूप छह गुना वेतन देना चाहिए।

**क्रयविक्रयमध्वानं भक्तं च सपरिव्ययम्।**

**योगक्षेमं च सम्प्रेक्ष्य वणिजो दापयेत् करान्।।127।।**

राजा को व्यापारी के माल के ख़रीदने व बेचने, परिवहन तथा देखभाल आदि पर होने वाले खर्चों को ध्यान में रखकर ही कराधान करना चाहिए।

**यथा फलेन युज्येत राजा कर्ता च कर्मणाम्।**

**तथा वेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत् सततं करान्।।128।।**

राजा को कराधान इस रूप में करना चाहिए, जिससे राष्ट्र में उद्योगों और व्यापारों की वृद्धि हो तथा राजा भी फले-फूले।

**यथाल्पाल्पमदन्त्याद्यं वार्यो कोवत्सषट्पदाः।**

**तथाल्पाल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः।।129।।**

जिस प्रकार जोंक, बछड़ा और भौंरा धीरे-धीरे ही अपना आहार खींचते हैं, उसी प्रकार राजा को भी राष्ट्र से थोड़ा-थोड़ा करके ही वार्षिक कर उगाहना चाहिए।

**पञ्चाशद् भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः।**

**धन्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव च।।130।।**

राजा को पशुओं और स्वर्ण के क्रय-विक्रय में होने वाले लाभ का पचासवां भाग (दो प्रतिशत), धान्य का (भूमि की स्थिति, नहरी, रेतीली आदि के अनुसार), छठा, आठवां अथवा बारहवां भाग (सोलह, बारह अथवा आठ प्रतिशत) कर के रूप में वसूलना चाहिए।

**आददीताथ षड्भागं द्रुम-मांस मधु सर्पिषाम्।**

**गन्धौषधिरसानां च पुष्पमूलफलस्य च।।131।।**

**पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वैदलस्य च।**

**मृण्मयानां च भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च।।132।।**

वृक्षों, मांस, मधु, घृत, सुगन्धित द्रव्यों (इत्र, क्रीम, पाउडर आदि) औषधियों, रसों (शरबत), पुष्पों, कन्द-मूलों और फलों पर लाभ का छठा भाग (सोलह प्रतिशत) कर के रूप में लेना चाहिए।

इसी प्रकार पत्तों, शाकों, तृणों, चमड़े, मिट्टी और पत्थर से बने पात्रों तथा अन्यान्य वस्तुओं के लाभ का भी छठा भाग कर के रूप में उगाहना चाहिए।

**म्रियमाणोऽप्याददीत न राजा श्रोत्रियात्करम्।**
**न च क्षुधाऽस्य संसीदेच्छ्रोत्रियो विषये वसन्।।133।।**

राजा (अर्थ के अभाव में और साधनों की कृच्छ्रता में) मरने की अवस्था में पहुंचा होने पर भी किसी वेदज्ञ विद्वान् से कर वसूल न करे। राजा को यह भी देखना चाहिए कि उसके राज्य में रहता हुआ ब्राह्मण क्षुधा से पीड़ित न होने पाये।

**यस्य राज्ञस्तु विषये श्रोत्रियः सीदति क्षुधा।**
**तस्यापि तत्क्षुधा राष्ट्रमचिरेण सीदति।।134।।**

जिस राजा के राज्य में श्रोत्रिय ब्राह्मण क्षुधा से व्याकुल होता है, ब्राह्मण की क्षुधा से उस राजा का राज्य थोड़े ही समय में नष्ट हो जाता है।

**श्रुतवृत्ते विदित्वाऽस्य वृत्तिः धर्म्यां प्रकल्पयेत्।**
**संरक्षेत्सर्वतश्चैनं पिता पुत्रमिवौरसम्।।135।।**

राजा श्रोत्रिय ब्राह्मण के वेदाध्ययन और कर्मानुष्ठान को जानकर उसकी धर्मयुक्त जीविका नियत करे। जिस प्रकार पिता अपने औरस (धर्मानुसार उत्पन्न) पुत्र की रक्षा करता है, उसी प्रकार राजा को श्रोत्रिय ब्राह्मण की आजीविका की चिन्ता करनी चाहिए।

**संरक्ष्यमाणो राज्ञाऽयं कुरुते धर्ममन्वहम्।**
**तेनायुर्वर्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च।।136।।**

राजा से संरक्षण प्राप्त कर श्रोत्रिय ब्राह्मण जब प्रतिदिन धर्मानुष्ठान करता है, तो उससे राजा की आयु, धन और यश की वृद्धि होती है।

**यत्किञ्चिदपि वर्षस्य दापयेत्करसंज्ञितम्।**
**व्यवहारेण जीवन्तं राजा राष्ट्रे पृथग्जनम्।।137।।**

व्यापार-उद्योग से अपना जीवन-यापन करने वाले राष्ट्र के लोगों (प्रजाजनों) से भिन्न (विदेशी) व्यक्तियों से भी राजा को थोड़ा-बहुत कर लेना चाहिए।

**कारुकाञ्छिल्पिनश्चैव शूद्रांश्चात्मोपजीविनः।**
**एकैकं कारयेत्कर्म मासि मासि महीपतिः।।138।।**

राजा को अनिश्चित आजीविका के कारण कर देने में असमर्थ—लोहार, बढ़ई तथा राज आदि कारीगरों, शूद्रों तथा मज़दूरी करने वालों—से महीना-दो-महीना काम ले लेना चाहिए।

**नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया।**

**उच्छिन्दन्ह्यात्मनो मूलमात्मानं तांश्च पीडयेत् ।।139।।**

तृष्णा के वश में पड़कर प्रजा से अधिक कर वसूलना प्रजा का मूल उच्छेदन करना है और प्रजा से अनुरागवश किसी प्रकार का कर न वसूलना आत्मघात है, क्योंकि अधिक कर वसूलने से जहां प्रजा में आक्रोश फैलता है और राजा अलोकप्रिय हो जाता है, वहां कर वसूली न करने से कोश रिक्त हो जाता है, जिससे विकास और कल्याण की योजनाएं ठप्प पड़ जाती हैं। अतः राजा को इन दोनों प्रकार की अति से बचकर मध्यम मार्ग अपनाना चाहिए।

**तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात्कार्यं वीक्ष्य महीपतिः।**

**तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति सम्मतः ।।140।।**

राजा को अवसर और कार्य के अनुसार ही कठोर तथा कोमल हो जाना चाहिए, क्योंकि समय के अनुसार चलने वाला राजा ही प्रजा के अनुकूल होता है।

**अमात्यमुख्यं धर्मज्ञं प्राज्ञं दान्तं कुलोद्भवम्।**

**स्थापयेदासने तस्मिन् खिन्नः कार्येक्षणे नृणाम् ।।141।।**

यदि राजा रोगादि किसी कारण अथवा व्यस्ततावश राज्य के सभी विषयों की देख-रेख करने में असमर्थ हो, तो उसे चाहिए कि अपने स्थान पर किसी धर्मात्मा, बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय और कुलीन व्यक्ति को अपना प्रतिनिधि बनाकर प्रधान अमात्य के पद पर नियुक्त कर दे।

**एवं सर्वं विधायेदमिति कर्तव्यमात्मनः।**

**युक्तश्चैवाप्रमत्तश्च परिरक्षेदिमाः प्रजाः ।।142।।**

उपर्युक्त विधि से सारी व्यवस्था करके अपने कर्तव्य का पालन करते राजा को अपनी प्रजा की रक्षा में सदैव सतर्क और संलग्न रहना चाहिए।

**विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्राद्ध्रियन्ते दस्युभिः प्रजाः।**

**सम्पश्यतः सभृत्यस्य मृतः स न तु जीवति ।।143।।**

जिस राजा और राज्य के अधिकारियों के देखते (सामने) चिल्लाती और सहायता के लिए पुकारती हुई प्रजा डाकुओं द्वारा लूटी जाती है, उस राजा को जीवित न समझकर मृत ही समझना चाहिए।

**क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम्।**

**निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ।।144।।**

क्षत्रिय का सबसे बड़ा धर्म प्रजा का पालन करना है। अपने इस धर्म का ठीक से पालन करने वाला राजा ही राज्य के सुख को भोगने का अधिकारी है।

**उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः।**
**हुताग्निर्ब्राह्मणांश्चार्च्य प्रविशेत् स शुभां सभाम् ।। 145 ।।**

राजा को एक पहर रात रहते उठ जाना चाहिए, शौचादि से निवृत्त होकर अग्निहोम आदि यज्ञों और ब्राह्मणों का पूजन करके अपनी सुन्दर सभा में प्रवेश करना चाहिए।

**तत्र स्थितः प्रजाः सर्वाः प्रतिनिन्द्य विसर्जयेत्।**
**विसृज्य च प्रजाः सर्वाः मन्त्रयेत् सह मन्त्रिभिः ।। 146 ।।**

सभा में उसे उपस्थित प्रजाजनों के मामले निपटाने चाहिए और फिर सन्तुष्ट प्रजाजनों को विदा करके मन्त्रियों के साथ परामर्श करना चाहिए।

**गिरिपृष्ठे समारुह्य प्रासादं वा रहोगतः।**
**अरण्ये निःशलाके वा मन्त्रयेदविभावतः ।। 147 ।।**

राजा को किसी ऐसे एकान्त, पर्वत की चोटी पर, महल के किसी गुप्त कक्ष के कोने में अथवा सर्वथा निर्जन वन में अपने मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करनी चाहिए, जहां भेदिये किसी भी रूप में न पहुंच सकें।

**यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथग्जनाः।**
**स कृत्स्नां पृथ्वीं भुङ्क्ते कोशहीनोऽपिपार्थिवः ।। 148 ।।**

जिस राजा के गुप्त रहस्यों को शत्रु मिलकर अथवा पृथक् रूप से नहीं जान पाते, वह राजा कोशहीन होने पर भी सारी पृथ्वी पर शासन करने में समर्थ होता है।

**जडमूकान्धबधिरास्तिर्यग्योनान्वयोऽतिगान्।**
**स्त्रीम्लेच्छव्याधितव्यङ्गान्मन्त्रकालेऽपसारयेत् ।। 149 ।।**

राजा को अपने मन्त्रियों के साथ विचार-विमर्श करते समय निम्नोक्त व्यक्तियों को वहां से हटा देना चाहिए—

जड़ (मूर्ख, अशिक्षित), मूक, अन्धे, बहरे, लंगड़े, अतिवृद्ध, स्त्री, म्लेच्छ, रोगी, विकृत अंग वाले तथा पालतू पक्षी (तोता, मैना) आदि। ये लोग अपने संकेतों से मन्त्र को प्रकट कर देते हैं।

**भिन्धन्त्यवमता मन्त्रं तिर्यग्योनास्तथैव च।**
**स्त्रियश्चैव विशेषेण तस्मात्तत्रादृतो भवेत् ।। 150 ।।**

जड़, मूक तथा बधिर आदि हीन भावना से ग्रस्त होने के कारण तथा पक्षी स्वभाव से ही अभ्यस्त होने के कारण मन्त्र को प्रकट कर देते हैं। स्त्रियों से तो

यह आशंका और भी अधिक रहती है। अतः राजा को इन सबको आदरपूर्वक मन्त्रस्थल से हटाने की चेष्टा करनी चाहिए।

**मध्यंदिनेऽर्धरात्रे वा विश्रान्तो विगतक्लमः।**
**चिन्तयेद् धर्मकामार्थान् सार्धं तैरेक एव वा ।। 151 ।।**

राजा को दोपहर अथवा आधी रात के समय शरीर की थकावट और मन के खेद से रहित होकर अकेले अथवा मन्त्रियों के साथ धर्म, अर्थ और काम से सम्बन्धित विषयों पर चिन्तन करना चाहिए।

**परस्पर विरुद्धानां तेषां च समुपार्जनम्।**
**कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ।। 152 ।।**

यदि धर्म, अर्थ और काम आदि विषयों पर मन्त्रियों के भिन्न-भिन्न विचार दिखाई दें, तो राजा को उन विषयों की चर्चा से हटकर कन्याओं के विवाह (उपयुक्त वर की खोज) और राजकुमारों की सुरक्षा की चर्चा करनी चाहिए।

**दूतः सम्प्रेषणं चैव कार्यशेषं तथैव च।**
**अन्तःपुरप्रचारं च प्रणिधीनां च चेष्टितम् ।। 153 ।।**
**कृत्स्नं चाष्टविधं कर्म पञ्चवर्गं च तत्त्वतः।**
**अनुरागापरागौ च प्रचारं मण्डलस्य च ।। 154 ।।**

राजा को मन्त्रियों के साथ दूसरे राज्यों में दूतों को भेजने, अधूरे कार्य को निपटाने, अन्तःपुर की गतिविधियों, प्रजा के प्रतिनिधियों के व्यवहार और मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की निष्ठा तथा विरक्ति जैसे आठ प्रकार के कार्यों तथा तात्त्विक दृष्टि से पञ्च वर्गों पर विचार-विमर्श करना चाहिए।

**टिप्पणी**—मनुजी ने तो आठ और पांच प्रकृतियों का नामोल्लेख नहीं किया। अन्यत्र मिलने वाले नाम इस प्रकार हैं—

**आठ कर्म**—(1) कर-उपहार प्राप्ति, (2) वेतन, पारितोषिक वितरण, (3) दुष्टों का त्याग, (4) अधिकारियों के मतभेदों का निवारण, (5) बुराई न पनपने देना, (6) लोकव्यवहार पर दृष्टि, (7) अपराधियों को दण्डित करना तथा (8) पराजितों को भूल-सुधारने एवं प्रायश्चित्त करने का अवसर देना।

**पंचवर्ग**—(1) कार्यारम्भ का उपाय, (2) पुरुष-सम्पत्ति, (3) हानि का प्रतिकार, (4) देशकाल का विभाग और (5) कार्यसिद्धि।

**मध्यमस्य प्रचारं च विजिगीषोश्च चेष्टितम्।**
**उदासीनप्रचारं च शत्रोश्चैव प्रयत्नतः ।। 155 ।।**
**एताः प्रकृतयो मूलं मण्डलस्य समासतः।**
**अष्टौ चान्याः समाख्याताः द्वादशैव तु ताः स्मृताः ।। 156 ।।**

राजा के पड़ोसी राजाओं से चार प्रकार के सम्बन्ध हो सकते हैं—(1) मध्यम, अर्थात् अवसर के अनुकूल व्यवहार करने वाला, (2) गुप्तरूप से विजय की इच्छा रखने वाला, (3) उदासीन रहने वाला तथा (4) प्रकट शत्रु। संक्षेप में मण्डल की ये चार मूल प्रकृतियां हैं, आठ अन्य हैं, इस प्रकार कुल मिलाकर बारह हैं। राजा को इन सब पर विचार करना चाहिए।

**अमात्य राष्ट्रदुर्गार्थदण्डाख्याः पञ्च चापराः।**
**प्रत्येकं कथितो ह्येता संक्षेपेण द्विसप्ततिः।।157।।**

अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोश और दण्ड—ये पांच और प्रकृतियां हैं। इनमें से प्रत्येक के संक्षेप में बहत्तर उपभेद होते हैं।

**अनन्तरमरिं विद्यादरिसेविनमेव च।**
**अरेरनन्तरं मित्रमुदासीनं तयोः परम्।।158।।**

शत्रु और शत्रु के मित्र को सदैव अपने सामने समझे, उन्हें दूर अथवा दुर्बल नहीं समझना चाहिए। शत्रु और उसके सहायक के उपरान्त ही अपने मित्र को अपने समीप समझना चाहिए। उसके अनन्तर तटस्थ (उदासीन) को समझना चाहिए। राजा को इन सब पर विचार करते रहना चाहिए।

**तान्सर्वानभिसन्दध्यात्सामादिभिरुपक्रमैः।**
**व्यस्तश्चैव समस्तैश्च पौरुषेण नयेन च।।159।।**

शत्रु, मित्र और उदासीन आदि सभी को साम-दाम आदि उपायों से वश में करे। राजा को आवश्यकतानुसार किसी के लिए एक अथवा एक से अधिक उपायों का प्रयोग करने की स्वतन्त्रता है।

**सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च।**
**द्वैधीभावसंश्रयं चैव षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा।।160।।**

राजा को (1) सन्धि, (2) विग्रह, (3) शत्रु पर अभियान, (4) अवसर की प्रतीक्षा में बैठना, (5) भीतर से शत्रुता रखते हुए बाहर से मित्रता बनाये रखना तथा (6) अपने से अधिक शक्तिशाली का आश्रय लेकर शत्रु को दबाना, जैसे छह गुणों पर सदैव विचार करते रहना चाहिए।

**आसनं चैव यानं च सन्धि विग्रहमेव च।**
**कार्यंवीक्ष्य प्रयुञ्जीत द्वैधं संश्रयमेव च।।161।।**

राजा को छह गुणों—आसन, यान, सन्धि, विग्रह, द्वैधीभाव तथा अन्य का आश्रय—का प्रयोग अवसर के अनुसार ही करना चाहिए।

**सन्धिं तु द्विविधं विद्याद्राजाविग्रहमेव च।**
**उभे यानासने चैव द्विविधः संश्रयः स्मृतः।।162।।**

सन्धि-विग्रह आदि छह गुणों में द्वैधीभाव को छोड़कर शेष पांचों के दो-दो भेद हैं।

**समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च।**

**तदा त्वायति संयुक्तः सन्धिर्ज्ञेयो द्विलक्षणः।।163।।**

सन्धि दो प्रकार की है—समान यानकर्मा और असमान यानकर्मा। समान यानकर्मा सन्धि में अथवा भारी लाभ के लिए दो राजा एक साथ किसी राजा पर चढ़ाई करते हैं और असमान यानकर्मा सन्धि वह है कि जिसमें दो राजा भिन्न-भिन्न राजाओं पर एक समय अथवा आगे-पीछे आक्रमण करते हैं।

**स्वयंकृतश्च कार्यार्थमकाल काल एव वा।**

**मित्रस्य चैवमपकृतं द्विविधो विग्रहः स्मृतः।।164।।**

विग्रह के दो भेद हैं, (1) अपना बदला लेने के लिए शत्रु के व्यसनादि को जानकर उपयुक्त अथवा अनुपयुक्त समय में युद्ध करना, (2) अपने मित्र के उपकार अथवा अपमान का बदला लेने के लिए अथवा उस पर हुए आक्रमण में उसकी रक्षा-सहायता के लिए शत्रु से युद्ध करना।

**एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया।**

**संहतस्य च मित्रेण द्विविधं यानमुच्यते।।165।।**

यान के दो भेद हैं—(1) संयोग तथा आवश्यकता से प्रेरित होना, अकेले ही शत्रु पर टूट पड़ना तथा (2) मित्र के साथ योजना बनाकर शत्रु पर चढ़ाई करना।

**क्षीणस्य चैव क्रमशो दैवात् पूर्वकृतेन वा।**

**मित्रस्य चानुरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम्।।166।।**

आसन के दो रूप भेद हैं—(1) पूर्वजन्म के पापों के अथवा इस जन्म में की गयी ग़लतियों के फलस्वरूप अथवा दुर्भाग्यवश शक्ति के क्षीण हो जाने से चुप बैठे रहना तथा (2) मित्र के अनुरोध को गौरव देते हुए बैठे रहना।

**बलस्य स्वामिनश्चैव स्थितिः कार्यार्थसिद्धये।**

**द्विविधं कीर्त्यते द्वैधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः।।167।।**

राजनीति के षट् गुणों के ज्ञाता विद्वानों के अनुसार द्वैध भी दो प्रकार का है—(1) राजा का सेना के एक भाग को एक स्थान पर रखना और (2) राजा का सेना के दूसरे भाग के साथ स्वयं दुर्ग में रहना।

**अर्थ सम्पादनार्थं च पीड्यमानस्य शत्रुभिः।**

**साधुपुव्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्मृतः।।168।।**

संश्रय दो प्रकार का है—(1) शत्रु से पीड़ित राजा का प्रयोजन विशेष की सिद्धि के लिए किसी की शरण में जाना तथा (2) बिना शत्रु-पीड़ा के ही सम्बन्धों की मधुरता के कारण दूसरे की शरण में जाना।

यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः।
तदा त्वेचाल्पिकां पीडां तदा सन्धिं समाश्रयेत् ।। 169 ।।

वर्तमान में थोड़ी-बहुत पीड़ा भुगतने पर भी भविष्य में अपनी निश्चित बढ़ोतरी को देखकर सन्धि कर लेनी चाहिए।

यदा प्रकृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृतीः भृशम्।
अत्युच्छ्रितं तथात्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम् ।। 170 ।।

अपने अमात्य, कोश तथा प्रजा आदि को अपने सर्वथा अनुकूल और सन्तुष्ट देखने पर तथा अपना सभी प्रकार से अभ्युदय देखने पर ही शत्रु से विग्रह करना चाहिए।

यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकम्।
परस्य विपरीतं च तदा यायाद्रिपुं प्रति ।। 171 ।।

सभी प्रकार से अपनी प्रजा को सन्तुष्ट और सेना को वलिष्ठ देखने पर तथा शत्रु की प्रजा को विपत्तिग्रस्त तथा उसकी सेना को दुर्वल देखने पर ही राजा को शत्रु पर आक्रमण (अभियान) करना चाहिए।

यदा तु स्यात्परिक्षीणो वाहनेन बलेन वा।
तदासीत्प्रयत्नेन शनकैः सान्त्वयन्नरीन् ।। 172 ।।

अपने वाहन और सेना को क्षीण देखने पर राजा को अपने शत्रुओं को वहकाते और शान्त करने का प्रयत्न करते हुए उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में वैठे रहना चाहिए।

मन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम्।
तदा द्विधा बलं कृत्वा साधयेत्कार्यमात्मनः ।। 173 ।।

शत्रु को सभी दृष्टियों से अपने से अधिक शक्तिशाली देखने पर राजा को द्विधाभाव अपनाना चाहिए। सेना के एक भाग को गुप्त रूप से तैयारी में लगा देना चाहिए और दूसरे भाग को दिखावे के लिए सामान्य कार्यकलाप में लगाये रखना चाहिए।

यदा परवलानां तु गमनीयतमो भवेत्।
तदा तु संश्रयेत्क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम् ।। 174 ।।

अभियान करने वाले शत्रु की शक्ति को प्रचण्ड और दुर्जेय देखने पर राजा को उससे भी अधिक बलवान् और धर्मात्मा राजा का आश्रय लेना चाहिए।

निग्रहं प्रकृतानां च कुर्याद्योऽरिबलस्य च।
उपसेवेत तं नित्यं सर्वयत्नैर्गुरुं यथा ।।175।।

शत्रु की शक्ति पर अंकुश रखने वाले और प्रजा का अनुरञ्जन करने वाले मित्र का गुरु के समान आदर-सत्कार करना चाहिए।

यदि तत्रापि सम्पश्येद्दोषं संश्रयकारितम्।
सुयुद्धमेव तत्रापि निर्विशङ्कः समाचरेत् ।।176।।

आश्रय लेने वाले राजा के मन के दुर्भाव को देखने पर उसके साथ निश्शंक भाव से युद्ध छेड़ देना चाहिए।

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः।
यथास्याभ्यधिकाः न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ।।177।।

नीतिज्ञ राजा को सामादि उपायों का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए, जिससे उसके मित्र, शत्रु और उदासीन बढ़ न सकें।

आयतिं सर्वकार्याणां तदात्व विचारयेत्।
अतीतानां च सर्वेषां गुणदोषाः न तत्त्वतः ।।178।।

राजा को अतीत में किये और वर्तमान में किये जाने वाले सभी कार्यों के गुण-दोषों पर तात्त्विक दृष्टि से विचार करना चाहिए और असफलता से शिक्षा लेकर दोषों का परिहार करना चाहिए।

आयत्या गुणदोषज्ञास्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः।
अतीते कार्ये शेषज्ञः शत्रुभिर्नाभिभूयते ।।179।।

भावी कार्यों के गुण-दोषों को जानकर दोषों के परिहार और गुणों के ग्रहण का शीघ्र निश्चय करने वाला तथा अतीत की असफलताओं से शिक्षा लेने वाला राजा शत्रुओं द्वारा कभी पराभूत नहीं होता।

यथैनं नाभिसन्दध्युर्मित्रोदासीनशत्रवः।
तथा सर्वं संविदध्यादेव सामासिको नृपः ।।180।।

संक्षेप में कुशल राजा की राजनीति की सफलता इसी में है कि वह ऐसे कार्य करे, जिससे उसे मित्र, शत्रु और उदासीन राजा दबाने न पायें।

यदा तु यानमातिष्ठेदरिराष्ट्रं प्रति प्रभुः।
तदाऽनेन विधानेन यायादरिपुरं शनैः ।।181।।

शत्रु राष्ट्र पर चढ़ाई करने के इच्छुक राजा को उसके नगर में आगे बनाये विधान से ही धीरे-धीरे धैर्य धारण करके जाना चाहिए।

मार्गशीर्षे शुभे मासि यायाद्यात्रां महीपतिः।
फाल्गुनं वाऽथ चैत्रं वा मासो प्रति यथाबलम् ।।182।।

अपनी सेना की जिस मास—अगहन, फाल्गुन अथवा चैत्र—में युद्धक्षमता अधिक बढ़ जाती हो, उसी मास में शुभ मुहूर्त निकलवाकर शत्रु राजा पर अभियान करना चाहिए।

**अन्येष्वपि तु कालेषु यदा पश्येद् ध्रुवं जयम्।**
**तदा यायाद्विगृह्यैव व्यसने चोत्थिते रिपोः।।183।।**

मगहर आदि तीन-चार महीनों के अतिरिक्त भी जिस समय अपनी विजय निश्चित दीखती हो अथवा शत्रु की ओर से छेड़खानी की जा रही हो अथवा अपना ही मन युद्ध के लिए अकुला रहा हो, तो उस स्थिति में राजा को युद्ध छेड़ देना चाहिए।

**कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं च यथाविधिः।**
**उपगृह्यास्पदं चैव चारान्सम्यग्विधाय च।।184।।**
**संशोध्य त्रिविधं मार्गं षड्विधं च बलं स्वकम्।**
**साम्परायिककल्पेन यायादरिपुरं शनैः।।185।।**

अभियान करने वाले राजा को राज्य और दुर्ग की रक्षा की व्यवस्था के उपरान्त यात्रा की ठीक-ठीक और पूरी तैयारी—कहां रात पड़ेगी और कहां रुकना सुरक्षित रहेगा और वहां निवास तथा भोजन की क्या व्यवस्था रहेगी आदि-आदि—करके दूतों को शत्रु पक्ष की तैयारी आदि की जानकारी के लिए नियुक्त करना चाहिए।

इसके उपरान्त सेना के प्रयाण के तीनों प्रकार—जल, स्थल और आकाश के मार्गों की सही जानकारी लेकर अपने छह प्रकार (आगे लिखे) के बल को लेकर संग्राम करने की विधि (व्यूह आदि की रचना) से शत्रु के नगर की ओर प्रस्थान करना चाहिए।

**छह प्रकार का बल**—(1) मार्ग के अवरोधक वृक्ष-लता-गुल्मादि को हटाने वाली सेना।

(2) मार्ग में पड़ने वाले गड्ढों को समतल बनाने वाली सेना।

(3) मार्ग में पड़ने वाली नदियों और झीलों पर सेतु-निर्माण और नौकाओं की व्यवस्था करने वाली सेना।

(4) मार्ग में बाधा खड़ी करने वाली शत्रुसेना अथवा ग्रामीणों से लोहा लेने वाली सेना।

(5) शत्रु के सम्भावित सहायकों को अपने पक्ष में बनाये रखने वाली सेना (बुद्धिमान् मन्त्री, राजदूत आदि)।

(6) सेना को खाद्य-सामग्री तथा युद्ध का सामान पहुंचाने वाली सेना।

कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार छह प्रकार का बल है—

(1) गजारोही, (2) अश्वारोही, (3) रथारोही, (4) पदाति, (5) कोष और (6) सेवक।

**शत्रुसेविनि मित्रे वा गूढे युक्ततरो भवेत्।**
**गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः।।186।।**

गुप्त रूप से शत्रु के हित की चिन्ता करने वाले मित्र से तथा एक बार सेवा से हटाकर फिर रखे गये सेवक से अत्यन्त सावधान रहना चाहिए, क्योंकि ये दोनों गुप्त शत्रु बन जाने पर अत्यधिक कष्टदायी होते हैं।

**दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा।**
**वाराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुडेन वा।।187।।**
**यतश्च भयमाशङ्केत्ततो विस्तारयेद् बलम्।**
**पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत सदा स्वयम्।।188।।**

राजा को दण्ड व्यूह—दण्ड के समान सेना की चारों ओर स्थिति—अधिकारियों के पीछे राजा, राजा के पीछे सेनापति, सेनापति के दोनों ओर क्रमशः गज, अश्व और पदाति सैनिक रहते हैं अथवा शकट, वराह, मकर, सूची और गरुड़ व्यूह (जहां जो उचित प्रतीत हो) से यात्रा करनी चाहिए।

जहां से भय की आशंका प्रतीत हो, उधर ही अपनी सेना को फैला देना चाहिए। राजा को सदैव पद्म व्यूह में अपने को पूर्ण सुरक्षित रखना चाहिए।

**सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत्।**
**यतश्च भयमाशङ्केत् प्राचीं तां कल्पयेद् दिशम्।।189।।**

राजा को अपने चारों ओर सेनापति और सेनानायकों को रखना चाहिए और जहां से भी भय की आशंका हो, उसे पूर्व दिशा मानना चाहिए। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार सभी धर्मकृत्य पूर्व की ओर मुख करके किये जाते हैं, उसी प्रकार राजा को उस दिशा की ओर ही अपना सारा ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

**गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान् कृतसंज्ञान् समन्ततः।**
**स्थाने युद्धे च कुशलानभीरूनऽविकारिणः।।190।।**

राजा को युद्ध के स्थान पर अपने चारों ओर सेना के स्तम्भरूप प्रामाणिक, भिन्न-भिन्न नाम धारण करने वालों, युद्धकुशल और कभी धोखा न देने वालों को अपने सहायकों के रूप में नियुक्त करना चाहिए।

**संहतान्योधयेदल्पान्कामं विस्तारयेद् बहून्।**
**सूच्या वज्रेण चैवैतान् व्यूहेन व्यूह्य योधयेत्।।191।।**

थोड़ी संख्या के योद्धाओं को संगठित करके अथवा उन्हें अलग-अलग फैला

करके युद्ध कराना चाहिए। इसके अतिरिक्त राजा सूची के अथवा वज्र के आकार का व्यूह बनाकर भी अपने सैनिकों से युद्ध करा सकता है।

**स्यन्दनाश्वैः समे युध्येदनूपे नौद्विपैस्तथा।**
**वृक्षगुल्मावृते चापैरसि-चर्मायुधैः स्थले।।192।।**

सम धरती पर रथों और अश्वों (पर सवार होकर) से, जल में गजों और नावों (सवार होकर) से, वृक्षों-लताओं से घिरी पृथ्वी पर धनुषों से तथा कण्टकादिरहित स्थल में खड्गों-चमड़े के शस्त्रों (चाबुक आदि) से युद्ध करना चाहिए।

**कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पञ्चालाञ्शूरसेनजान्।**
**दीर्घाल्लघूंश्चैव नरानग्रनीकेषु योजयेत्।।193।।**

कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पञ्चाल और शूरसेन प्रभृति देशों के सैनिकों तथा आवश्यकता से अधिक लम्बे और नाटे सैनिकों को सेना के अग्रभाग में रखना चाहिए, क्योंकि ये रण-कर्कश वीर होने के कारण शत्रु को नाकों चने चबवाते हैं।

**प्रहर्षयेद् बलं व्यूह्य तांश्चसम्यक् परीक्षयेत्।**
**चेष्टांश्चैव विजानीयादरीन् योधयतामपि।।194।।**

व्यूह की रचना करने के उपरान्त राजा को चाहिए कि वह सेना को खूब प्रोत्साहित करे। राजा को सैनिकों के मनोभावों पर और शत्रु से युद्ध करते समय उनकी चेष्टाओं पर कड़ी दृष्टि रखनी चाहिए।

**उपरुध्यारिमासीत् राष्ट्रं चास्योपपीडयेत्।**
**दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम्।।195।।**
**भिन्द्याच्चैव तडागानि प्राकारपरिखास्तथा।**
**समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा।।196।।**

आक्रमणकारी राजा द्वारा शत्रु को घेरकर उसके राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर देना चाहिए, उसके घास (पशुओं के भोजन), अन्न, जल और ईंधन के स्रोतों को निरन्तर तोड़-फोड़ देना चाहिए।

शत्रु के देश के तालाबों, दुर्ग की दीवारों तथा खाइयों को छिन्न-भिन्न कर देना चाहिए। शत्रु को रात में ही घेरकर उसे दुर्बल और क्षीण मनोबल वाला बना देना चाहिए।

**उपजप्यानुपजपेद् बुध्येतैव च तत्कृतम्।**
**युक्ते च दैवे युध्येत जयप्रेप्सुरपीतभीः।।197।।**

राजा को चाहिए कि शत्रु पक्ष के फोड़े जा सकने वाले मन्त्री आदि की

दुर्बलताओं की पूर्ति करके उन्हें फोड़ ले और उनके माध्यम से शत्रु की योजना की जानकारी प्राप्त कर ले। फिर यदि भाग्य को अनुकूल समझे, तो निर्भय होकर विजय की कामना से युद्ध छेड़ दे।

**साम्ना दानेन भेदेन समस्तैरथवा पृथक्।**
**विजेतुः प्रयतेतारीन्न युद्धेन कदाचन।।198।।**

विजय की इच्छा वाले राजा को साम अथवा दान अथवा भेद से अथवा तीनों से शत्रु को अपने अनुकूल बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। इन तीनों के विफल हो जाने पर ही युद्ध का आश्रय लेना चाहिए। सहसा युद्ध नहीं छेड़ देना चाहिए।

**अनित्यो विजयो यस्माद् दृश्यते युध्यमानयोः।**
**पराजयश्च संग्रामे तस्माद् युद्धं विवर्जयेत्।।199।।**

युद्ध करने वाले दोनों पक्षों की जय-पराजय सदैव अनित्य और अनिश्चित रहती है, अर्थात् एक बार यदि विजय मिल जाती है, तो यह आवश्यक नहीं कि दूसरी बार भी विजय ही मिले। अतः राजा को यथासम्भव युद्ध का परित्याग ही करना चाहिए।

**त्रयाणामप्युपायानां पूर्वोक्तानामसम्भवे।**
**ततो युध्येत सम्पन्नो विजयेत रिपून्यथा।।200।।**

पूर्वोक्त तीनों—साम, दान और भेद—उपायों के असफल हो जाने पर ही राजा को अपनी ओर से इस प्रकार पूरी तैयारी करके शत्रु पर आक्रमण करना चाहिए, जिससे कि विजय निश्चित हो जाये।

**जित्वा सम्पूजयेद्देवान्ब्राह्मणांश्चैव धार्मिकान्।**
**प्रदद्यात्परिहारांश्च स्थापयेदभयानि च।।201।।**

शत्रु को जीतने के उपरान्त राजा को देवों और धर्मात्मा ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए, जिन प्रजाजनों की अन्न-धन तथा जल की हानि हुई हो, उनकी क्षति-पूर्ति करनी चाहिए और प्रजाजनों को अभय का विश्वास प्रदान करना चाहिए।

**सर्वेषां तु विदित्वेषां समासेन चिकीर्षितम्।**
**स्थापयेत्तत्र तद् वश्यं कुर्याच्च समयक्रियाम्।।202।।**

पराजित राजा और उसके मन्त्रियों के मनोरथ (किसे वे राजगद्दी पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं) को संक्षेप में जानकर विजयी राजा, पराजित राजा को अथवा उसके वंश में उत्पन्न योग्य व्यक्ति को राज्य पर प्रतिष्ठित कर दे और वहां के प्रचलित नियमों, विधि, निषेधों पर अपनी स्वीकृति की घोषणा कर दे।

प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्मान्यथोदितान्।
रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह।।203।।

विजेता राजा पराजित राजा के राज्य में प्रचलित धर्माचारों को मान्यता देने की घोषणा करे और अपने प्रमुख मन्त्रियों के साथ उसे राज्य पर अभिषिक्त करके उसे रत्नादि उपहार में समर्पित करे।

आदानमप्रियकरं दानं च प्रियकारकम्।
अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशस्यते।।204।।

यद्यपि अभिलषित पदार्थों का किसी से लिया जाना कभी रुचिकर नहीं होता, जबकि किसी द्वारा दिया जाना प्रिय लगता है, तथापि अवसर विशेष में प्रिय-अप्रिय का विचार किये बिना लेना-देना करना ही पड़ता है।

सर्वं कर्म दैवायत्तं विधाने दैव मानुषे।
तयोर्दैवमचिन्त्यं तु मानुषे विद्यते क्रिया।।205।।

इस संसार में सभी कार्य दैव और मनुष्य के अधीन हैं, दोनों में दैव तो अचिन्त्य है, अर्थात् उस पर किसी का वश नहीं, परन्तु मनुष्य तो स्वतन्त्र है।

अभिप्राय यह है कि कर्तव्य मनुष्य के अधीन है और उसका फल देना भाग्य के अधीन है। मनुष्य का फल पर तो वश नहीं है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उसे कर्तव्य से विमुख हो जाना चाहिए, अर्थात् फल की चिन्ता किये बिना उसे अपने कर्तव्य का निर्वाह करना चाहिए।

सह वापि व्रजेद्युक्तः सन्धिं कृत्वा प्रयत्नतः।
मित्रं भूमिं हिरण्यं वा सम्पश्यंस्त्रिविधं फलम्।।206।।

विजयी राजा पराजित राजा से कोरी मित्रता गांठकर अथवा उसके राज्य की कुछ भूमि को लेकर अथवा स्वर्णादि लेकर उससे सन्धि करके प्रयत्नपूर्वक वहां से चल दे, क्योंकि शत्रु पर चढ़ाई के यही तीन उद्देश्य होते हैं।

पार्ष्णिग्राहं च सम्प्रेक्ष्य तथाक्रन्दं च मण्डले।
मित्रादथाप्यमित्राद्वा यात्राफलमवाप्नुयात्।।207।।

पार्ष्णिग्राह—शत्रु के राज्य को जीतकर विजेता राजा का सहायक और क्रन्द, पार्ष्णिग्राह को रोकने वाला—को देखकर विजयी राजा को पराजित राजा से यात्रा का फल प्राप्त करना चाहिए।

अभिप्राय यह है कि विजेता राजा को यह ध्यान में रखना चाहिए कि उसकी विजय पार्ष्णिग्राह के कारण हुई है और उसके पीछे क्रन्द लगा हुआ है।

हिरण्यभूमिसम्प्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते।
यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायाति क्षमम्।।208।।

कोई भी राजा किसी से स्वर्ण अथवा भूमि लेकर उतना नहीं बढ़ता, जितना किसी की मित्रता पाकर बढ़ता है। मित्रता से तो दुर्बल राजा भी सबल बन जाता है।

**धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च।**
**अनुरक्तस्थिरारम्भं लघु मित्रं प्रशस्यते।।209।।**

धर्मात्मा, कृतज्ञ, स्वभाव से सन्तुष्ट रहने वाला, अनुराग करने वाला, स्थिर कार्य का आरम्भ करने वाला छोटा मित्र अच्छा होता है।

**प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दातारमेव च।**
**कृतज्ञं धृतिमन्तं च कष्टमाहुररिं बुधाः।।210।।**

विद्वान् लोग बुद्धिमान्, कुलीन, शूरवीर, चतुर, दानी, कृतज्ञ और धैर्यवान् शत्रु को कठिन बताते हैं, अर्थात् उन पर विजय पाना सरल नहीं है।

**आर्यता पुरुषज्ञानं शौर्यं करुणवेदिता।**
**स्थौललक्ष्यं च सततमुदासीन गुणोदयः।।211।।**

सभ्यता, मनुष्यत्व की पहचान, शूरता, कृपालुता तथा मोटी-मोटी बातों पर ऊपरी रूप से लक्ष्य रखना उदासीनता के गुण उदय होने का लक्षण है। इन गुणों की स्थिति व्यक्ति के उदासीन होने की सूचक है।

**क्षेम्यां सस्यप्रदां नित्यां पशुवृद्धिकरीमपि।**
**परित्यजेन्नृपो भूमिमात्मार्थमविचारयन्।।212।।**

कल्याण करने वाली, धन-धान्य से सम्पन्न, हरी-भरी और पशु-वृद्धि करने वाली भूमि भी राजा को आत्मकल्याण के लिए बिना अधिक सोच-विचार किये छोड़ देनी चाहिए।

**आपदर्थेधनं रक्षेद्दारान् रक्षेद् धनैरपि।**
**आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि।।213।।**

आपत्ति से रक्षा के लिए धन जोड़ना चाहिए। स्त्रियों की रक्षा के लिए उस धन को भी ख़र्च करने में संकोच नहीं करना चाहिए, परन्तु जब अपने पर संकट आये, तो धन और स्त्रियों को भी अपने बचाव में लगा देना चाहिए।

**सह सर्वाः समुत्पन्नाः प्रसभमीक्ष्यापदोभृशम्।**
**ससंयुक्तांश्च वियुक्तांश्च सर्वोपायान्सृजेद् बुधः।।214।।**

अनेक आपत्तियों को एक साथ उत्पन्न देखकर बुद्धिमान् व्यक्ति को साम-दानादि सभी उपायों का एक साथ अथवा अलग-अलग प्रयोग करना चाहिए।

**उपेतारमुपेयं च सर्वेपायांश्च कृत्स्नशः।**
**एतत्त्रयं समाश्रित्य प्रयतेतार्थसिद्धये।।215।।**

तीनों—उपाय करने वाले, उपाय के योग्य और सभी उपायों—का ठीक-ठीक विचार करके अर्थ-सिद्धि के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

**एवं सर्वमिदं राजा सह सम्मन्त्र्य मन्त्रिभिः।**
**व्यायामाप्लुतमध्याह्ने भोक्तुमन्तःपुरं विशेत् ।।216।।**

इस प्रकार सभी विषयों पर मन्त्रियों से विचार करने के उपरान्त राजा को स्नान-व्यायाम करना चाहिए और मध्याह्न के समय भोजन के लिए अन्तःपुर में प्रविष्ट होना चाहिए।

**तत्रात्मभूतैः कालज्ञैरहार्यैः परिचारकैः।**
**सुपरीक्षितमन्नाद्यमद्यान्मन्त्रैर्विषापहैः।।217।।**

अन्तःपुर में राजा को सर्वथा विश्वस्त, समय का ज्ञान रखने वाले, भली प्रकार परीक्षित, अर्थात् प्रलोभन में आकर शत्रु पक्ष से न मिलने वाले भृत्यों की उपस्थिति में किसी भी प्रकार के विष का शमन करने में समर्थ मन्त्रों से शुद्ध किये हुए अन्न का सेवन करना चाहिए।

**विषघ्नैरगदैश्चास्य सर्वद्रव्याणि योजयेत्।**
**विषघ्नानि च रत्नानि नियतो धारयेत्सदा।।218।।**

राजा के भोजन तथा अन्य खाद्य पदार्थों में विषनाशक ओषधियों को डालते रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त राजा को विषनाशक रत्नों को भी सावधानी से धारण करना चाहिए।

**परीक्षिताः स्त्रियश्चैनं व्यजनोदकधूपनैः।**
**वेषाभरणसंशुद्धाः स्पृशेयुः सुसमाहिताः।।219।।**

अन्तःपुर में राजा की पंखा, जल तथा धूप-गन्ध आदि करने के रूप में सेवा करने वाली स्त्रियां जहां सुदर्शना, सुन्दर वेशभूषा वाली और चतुर होनी चाहिए, वहां ईमानदारी की दृष्टि से भी भली प्रकार जांची-परखी होनी चाहिए।

**एवं प्रयत्नं कुर्वीत यानशय्यासनाशने।**
**स्नाने प्रसाधने चैव सर्वालङ्कारकेषु च।।220।।**

राजा की सवारी, शय्या, आसन, भोजन, प्रसाधन तथा अलंकरण में भी इसी प्रकार की सावधानी बरतनी चाहिए। वहां भी सुपरीक्षित और विश्वस्त व्यक्ति ही नियुक्त करने चाहिए।

**भुक्तवान् विहरेच्चैव स्त्रीभिरन्तःपुरे सह।**
**विहृत्य तु यथाकल्पं पुनः कार्याणि चिन्तयेत्।।221।।**

भोजन करके राजा अन्तःपुर में ही विश्वस्त और रूपवती स्त्रियों के साथ थोड़ी चहलक़दमी करे और फिर राजसभा में आकर विचारणीय विषयों पर

विचार करे।

**अलंकृतश्च सम्पश्येदायुधीयं पुनर्जनम्।**
**वाहनानि च सर्वाणि शस्त्राण्याभरणानि च ।।222।।**

वस्त्राभूषणों से सुसज्जित राजा राजसभा में आकर शत्रु के जीते हुए शस्त्रों, सिपाहियों, सभी वाहनों, आयुधों और आभूषणों का निरीक्षण करे।

**सन्ध्यां चोपास्य शृणुयादन्तर्वेश्मनि शस्त्रभृत्।**
**रहस्याख्यायिनां चैव प्रणिधीनां च चेष्टितम्।।223।।**

सायंकाल सन्ध्या-उपासना करके महल के गुप्त गृह में शस्त्र धारण किये हुए राजा को रहस्यवक्ताओं और गुप्तचरों के प्रतिवेदन को सुनना चाहिए।

**गत्वा कक्षान्तरं त्वन्यत्समनुज्ञाय तं जनम्।**
**प्रविशेद्भोजनार्थं च स्त्रीवृत्तोऽन्तःपुरं पुनः ।।224।।**

गुप्तचरों को विदा करके राजा दूसरे कक्ष में चला जाये और वहां से अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ भोजन के लिए अन्तःपुर में प्रवेश करे।

**तत्र भुक्त्वा पुनः किञ्चित्तूर्यघोषैः प्रहर्षितः।**
**संविशेत्तु यथाकालमुत्तिष्ठेच्च गतक्लमः।।225।।**

अन्तःपुर में भोजन करके राजा को थोड़ा गाना-बजाना सुनना चाहिए और फिर थकावट दूर करके शयनगृह में चले जाना चाहिए।

**एतद् विधानमातिष्ठेदरोगः पृथिवीपतिः।**
**अस्वस्थः सर्वमेतत्तु भृत्येषु विनियोजयेत्।।226।।**

राजा को स्वस्थ होने पर उपर्युक्त वर्णित (दिनचर्या) सभी कार्य स्वयं करने चाहिए और अस्वस्थ होने पर ये कार्य विश्वस्त भृत्यों पर छोड़ देने चाहिए।

**।। सप्तम अध्याय समाप्त ।।**